गुरुकुल-पत्रिका

आषाढ़, २०४० अंक-३

जून, १९८३ वर्ष-३५ पूर्णांक-३४५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका

गुरुकुल-पत्रिका : सम्पादक-मण्डल

विषय सूची

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका]

आषाढ, २०४० अङ्क-३
जून, १९८३ वर्ष ३५ पूर्णाङ्क-३४५

श्रुति सुधा

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ।। साम० ४ ।।

अन्वयः—द्रविणस्युः अग्निः विपन्यया समिद्धः आहुतः शुक्रः वृत्राणि जङ्घनत् ।

सं० अन्वयार्थ—धन-बल देने का इच्छुक अग्नि विशिष्ट स्तुति से सम्यक् प्रदीप्त और आहुत होकर अत्यन्त तेजोरूप हुआ वृत्रों को समाप्त कर देता है।

अन्वयार्थ—(1द्रविणस्युः अग्निः) उपासकों को ऐश्वर्य तथा आत्मबल प्रदान करने की इच्छा वाला ज्योतिः स्वरूप जगदीश्वर (2विपन्यया समिद्धः) विशिष्ट अर्थात् उत्कृष्ट व्यवहारों तथा विशिष्ट अर्थात् हृदय से की गई स्तुति, प्रार्थना और उपासना से हृदय मन्दिर में सम्यक् प्रदीप्त हुआ-सम्यक् प्रकाशित हुआ, तथा (आहुतः शुक्रः) आत्मसमर्पण रूपी आहुति से आहुत होकर और भी अधिक प्रदीप्त तेजोमय हुआ हमारे (वृत्राणि जङ्घनत्) आत्मा पर आवरण डालने वाले काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार-इर्ष्या-द्वेष आदि वृत्रों को शनैः शनैः बिल्कुल ही समाप्त कर देता है और तब वह द्रविणस्युः उन हम उपासकों को आत्म बल तथा अध्यात्मैश्वर्यों से सम्पन्न कर देता है।

१—द्रविणस्युः । द्रविणं धनं च बलं च (निरु० २.५; निघं० २.६, २.१०) तदिच्छतीति द्रविणस्युः । "छन्दसि परेच्छायामपि क्यज् वक्तव्यम्" इति क्यच् । (७.४.३६) सुगागम । "क्याच्छन्दसि" (अ०३.२.१७०) इति उ प्रत्ययः ।

२—"विपन्येति स्तुतिर्नाम" वि+पण व्यवहारे स्तुतौ च ।

इस मे कोई सन्देह नहीं कि जब हम अपने आहार व्यवहारों को शुद्ध-पवित्र बनाकर प्रकाशस्वरूप प्रभु की, हृदय से स्तुति प्रार्थना और उपासना करते है और यहाँ तक कि उसके प्रति पूर्णतया आत्म-समर्पण कर उसका आह्वान करते है, तो वह हमारे हृदय मन्दिर में सम्यक् प्रदीप्त हुआ-अत्यन्त तेजीस्वी हुआ-हुआ हमारी विषय-वासनाओं रूप वृत्रों को समाप्त कर हमें वह अनुपम आध्यात्मिक ऐश्वर्य और आत्मबल प्रदान करता है कि पुनः ये वृत्र हमें कभी नही दबा पाते।

यो तो हमने अपने सुख-सौभाग्य के लिये-संसार में एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे तथा तीसरे के बाद चौथे अपने सुख-आनन्द के लिये बुद्धिपूर्वक-स्थान, पद, पुरुष और पदार्थ का वरण किया-चयन किया, पर उन सबके वरण में-चयन मे हमको पूर्णतया सुख चैन मिला नही। अतः अब मेधावी होकर अर्थात् अत्यन्त तीव्र बुद्धि वाले होकर अपने लोक-परलोक को सफल बनाने के लिये-अपने सुख-चैन के लिये अब हम उस प्यारे और सब जग से न्यारे प्रकाशस्वरूप प्रभु का वरण करते हैं जो सृष्टि-रूप यज्ञ का उत्तम प्रज्ञा वाला उत्तम कर्त्ता है। विश्व भर के पदार्थों का स्वामी है और सर्वज्ञ है। इन पदार्थों का स्वामी होने और सर्वज्ञ होने तथा सबको अपने-अपने कर्मानुसार ये सब पदार्थ प्रदान करने वाला है। ये सब पदार्थ प्रदान कर वह दूत बन कर सबको इनके सदुपयोग करने की प्रेरणा वा वेद द्वारा सन्देश देने वाला है और अगर उसके विपरीत कोई चले तो उसको उपतप्त करने वाला-दण्ड देने वाला भी है। हमे विश्वास है कि उसका वरण कर लेने पर हम अब ऐसा आचरण कर सकेंगे जिसके परिणाम स्वरूप जहां लोक मे हमे सुख सौभाग्य मिल सकेगा वहां परलोक मे भी हमारा कल्याण होगा।

ईश्वर—

जिसके गुणकर्म स्वभाव और स्वरूप सत्य ही है जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो एक अद्वितीय सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वत्र, व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्य गुण वाला है और जिसका स्वभाव अविनाशी ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सर्वजीवों को पापपुण्य के फल ठीक-ठीक पहुँचाना है, उसको ईश्वर कहते है।

धर्म—

जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपातरहित न्याय सर्वहित करना है जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिए यही एक मानना योग्य है उसको धर्म कहते है। (आर्योद्देश्य रत्नमाला—१, २)

महापुरुष-चरितम्

राम का वनगमन

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी वन में जाते है परन्तु उनके मुखमण्डल पर विषाद की रेखा तक नही है। उनकी इस स्थिति के सम्बन्ध मे महर्षि वसिष्ठ ने ठीक ही कहा था—

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च ।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ।।

राज्याभिषेक के लिये बुलाये गये और वन के लिये विदा किये गए श्री राम के मुख के आकार में मैने कोई भी अन्तर नही देखा।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते है

प्रसन्नतायां न गताभिषेकस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।

राज्याभिषेक की खुशी से न ही राम खिले और न ही वनवास के दुःख से राम कुम्हलाए।

योगेश्वर श्री कृष्ण जी

परोपकारार्पित जीवितो यः कंसादिदुष्टारिगणस्य हन्ता ।
गीतामृतं पाययिता प्रशस्तं कृष्णो महात्मा स न केन वन्द्यः ॥

जिसने परोपकार में जीवन लगाया, कंसादि दुष्ट शत्रुओं का हनन किया, प्रसिद्ध गीतामृत का लोगो को पाना कराया, ऐसे श्री कृष्ण महात्मा किससे वन्दनीय नही ?

भूत्वेह लोके गुणसागरोऽपि यः पादपूजां विदधे द्विजानाम् ।
आसीत् सुहृद् यो धनवर्जितानां कृष्णो महात्मा स न केन वन्द्यः ॥

जिन्होंने गुणों का समुद्र होते हुए भी राजसूय यज्ञ मे ब्राह्मणो के पैर धोने का ही काम लिया, जो निर्धनों के मित्र थे, ऐसे महात्मा कृष्ण भला किससे पूजनीय नही ?

महर्षि दयानन्द सरस्वती

विषं प्रदायाप्यपकारकर्त्रे योऽदाद् धनं तस्य हि रक्षणार्थम् ।
प्रेम्णा स्वशत्रूनपि मोहयन्तं, ऋषिं दयानन्दमहं नमामि ।।

विष देने वाले अपकारी को भी जिसने उसकी रक्षा के लिये धन दिया, प्रम से अपने शत्रुओं को भी मोहित करने वाले ऐसे ऋषि दयानन्द को मैं नमस्कार करता हूँ ।

गुरुवर्य स्वामी श्रद्धानन्द

निर्भीको यः, सरलहृदयः, सत्यवाक् स्पष्टवक्ता,
देवे भक्तिं, परमविमलाम् आदधानोऽविकम्पाम् ।
शुद्धिद्वारा, सकलमनुजान्, दीक्षमाणः सुधर्मे,
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरोऽसौ सदा वन्दनीयः ।।

जो निर्भय, सरल हृदय, सत्यवादी और स्पष्टवक्ता थे, जो परमात्मा में निश्चल भक्ति रखते थे, शुद्धि द्वारा जो सब मनुष्यों को उत्तमधर्म की दीक्षा देते थे, ऐसे गुरुवर्य स्वामी श्रद्धानन्द जी सर्वदा पूजनीय है ।

(पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड)

अधर्म—

जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर और पक्षपात सहित अन्यायी हो के, बिना परीक्षा करके अपना ही हित करना है, जो अविद्या, हठ, अभिमान, क्रूरतादि दोषयुक्त होने के कारण वेदविद्या से विरुद्ध है और सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य है, वह अधर्म कहाता है ।

पुण्य—

जिसका स्वरूप विद्यादि शुभ गुणों का दान और सत्य भाषणादि सत्याचार का करना है उसको पुण्य कहते है ।

(आर्योद्देश्य रत्नमाला—३ ४)

सम्पादक के नाम पत्र

महोदय,

गुरुकुल पत्रिका के अप्रैल ८३ के अंक मे जो मुझे आज ११-८-८३ को उपलब्ध हुआ है डॉ० भवानीदयाल भारतीय का आपके नाम एक पत्र छपा है जिसमे मुझ लेखक से पत्रिका के जनवरी–मार्च ८३ के अंक मे उसके द्वारा लिखे एक लेख "१८५७ के गदर मे दयानन्द सरस्वती की भूमिका शीर्षक" पर कुछ प्रश्न पूछे है। प्रश्न तो लेखक को लिखकर भेजे जाते है, यह सामान्य शिष्टाचार है। पर प्रश्न पत्रिका में प्रकाशित कराये है। आपका यह कर्त्तव्य था कि यह प्रश्न मुझे दे देते, तथा प्रश्न व प्रश्नोत्तर दोनो साथ-साथ छपजाते ताकि पाठको में भ्रम पैदा करने का श्री भारतीय जी का उद्देश्य सफल न हो पाता क्योंकि वे लगभग ३ वर्ष से यह कुप्रचार मेरे बारे मे निजी वैमनस्यता के कारण स्वयं व अपनी सिन्डीकेट [चार शिष्यों की चौकड़ी] के माध्यम से करते आ रहे है। सविता में वेद-विरुद्ध लेख छपते है। करपात्री ने वेद–परिजात छापी थी। उनका उत्तर देकर, छापकर हमने उन्हे प्रोत्साहित कर दिया है, मानो उनके द्वारा की हुई समीक्षा मे कुछ बल हो, इससे हमने उन्हे प्रसिद्ध कर दिया है। मै इस चौकड़ी के असंयत एवं लगभग असभ्य भाषा मे लिखी टिप्पणी न पढता हूँ, न उसका उत्तर देता हूँ ताकि उत्तर देने से कही यह न समझा जावे कि उनकी समीक्षा मे कुछ तथ्य या महत्त्व है। पर इस बार गुरुकुल पत्रिका मे आया है, और गुरुकुल मेरी Almamater है। अतः उनकी प्रश्न–जिज्ञासा शान्त करना मेरा कर्त्तव्य है। आखिर हम दोनो आर्य-समाजी है।

श्री भारतीय जी ने सम्भवतः संस्कृत मे एम० ए० करके गवर्नमैन्ट कालेज अजमेर में नौकरी की है। अतः राजनीति–विज्ञान उनका विषय नहीं है। मैने दयानन्द सरस्वती द्वारा पुनः प्रस्तुत वैदिक राजदर्शन पर भोपाल विश्वविद्यालय से डाक्टरेट (Ph.D) ली है। अतः उनका यह लिखना कि "लेखक का स्वामी दयानन्द के जीवन, उनके ग्रन्थों, कार्यों तथा उनकी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध मे सामान्य सी जानकारी भी नही है" केवल ईर्ष्या वश है। यह न प्रश्न है, न प्रश्न करने का सभ्य ढंग। मैं केवल यही कहूँगा कि स्वामी जी को महज समाज सुधारक और अंग्रेजो का चाटुकार मानने वाले स्वामी जी महाराज की धवल कीर्त्ति मे धब्बा लगाने वाले ही है। और स्वामी जी महाराज के राष्ट्र–परक कार्यों के विषय मे मै उन्हें एक और डाक्टरेट हेतु गाइड कर सकता हूँ।

अब उनके प्रश्न पर आता हूँ।

१ उक्त लेख मेरी डाक्टरेट थीसिस का ही एक अंग है। उसके एक अध्याय मे भारत के राष्ट्रीय–संग्राम में आर्य समाज के योगदान नामक एक अध्याय है। उस अध्याय के एक उपभाग मे दयानन्द

सरस्वती द्वारा १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध मे लिये भाग का उल्लेख है। वही कानपुर के पास शिवराजपुर ग्राम मे अंग्रेजो की फौजो का तथा नाना साहब की फौजों के युद्ध का जिक्र है। नाना साहब की फौज मे वाघेर क्षत्रिय थे, जो गुजरात के क्षत्रिय स्रोतो मे से है। सत्यार्थ प्रकाश मे श्री स्वामी जी महाराज ने इस युद्ध का सजीव वर्णन मूर्ति पूजा खंडन प्रसंग मे लिखा है कि वे अंग्रेजो से वीरता पूर्वक लड़े, पर मूर्ति शत्रु की एक टाग भी न तोड़ सकी। कानपुर में मैस्कर घाट पर नाना का मंदिर था, जिसकी मूर्तिया अंग्रेज सैनिकों ने तोड दी थी। वे अब भी ऐसी ही हालत मे है। यह दयानन्द सरस्वती द्वारा इस युद्ध के दर्शक होने के प्रमाण में कहा गया था, क्योकि थ्योसोफिस्ट पत्रिका (तत्कालीन) के तथा स्वा० सच्चिदानन्द द्वारा प्रकाशित बगाल से प्राप्त योगी के आत्मचरित्र पुस्तक के अनुसार इस युद्ध वाले दिन स्वामी जी कानपुर ही मे थे। यह तो हुआ प्रसंग। इस पर भारतीय जी को कुछ नही कहना। उद्धरण देते समय प्रूफ की गलती से सन् १८७० सत्यार्थ प्रकाश की प्रकाशन तिथि की बात उठाकर वे वितण्डा खड़ा कर रहे है मेरे लेख मे यह कही नही लिखा कि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण मे यह छपा है। प्रथम संस्करण का कही जिक्र ही नही है। अतः विषय-वस्तु की चर्चा न करके संख्या के प्रूफ मे आंशिक अशुद्धि रहने पर दोष ढूढना एक मुन्शी का काम तो हो सकता है डाक्टर (Ph. D.) का नही। फिर मुन्शी जी इस प्रश्न मे यह और जोड रहे है:—

"उन्होने (यानी मैने) शायद १८७५ मे प्रकाशित प्रथम संस्करण के दर्शन भी नही किये होंगे। वाघेर लोगो का उल्लेख प्रथम सस्करण मे नही है, द्वितीय संशोधित संस्करण मे है। यदि उन्होने सन् १८७५ का सस्करण न देखा हो तो परोपकारिणी सभा या मेरे निजी पुस्तकालय मे आकर देखे।"

जादू वह है जो सर पर चढ़कर बोले। वाघेरो का उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश मे होना तो मान लिया। और प्रथम संस्करण की फोटोस्टेट कापी या पुस्तक परोकारिणी सभा के उपमंत्री होने के नाते वहां से येन केन प्रकारेण प्राप्त कर घर ले आना कोई अत्याधिक गर्वोक्ति की बात नही हो सकती। मै आपकी सूचना के लिए लिखता हूँ कि मेरा परिवार स्वामी जी के मुरादाबाद स्थित सहयोगी स्व० मुन्शीइन्द्रमणि से सम्बन्धित है। मेरे परिवार मे प्रथम संस्करण की प्रति सुरक्षित है। उसके प्रकाशक राजा जयकृष्ण दास डिप्टी कलैक्टर मुरादाबाद के ही निवासी थे।

२- दूसरा प्रश्न पृष्ठ-२६ पर श्याम जी कृष्णवर्मा के जीवन के सम्बन्ध में है। वे कहते है कि वर्मा जी का जीवन चरित्र मैने देखा भी नही है। शायद मुन्शी जी ने ज्योतिष भी सीख ली है। मेरे पास मैडम कामा, श्री वर्मा जी के भतीजे तथा दो अन्य लेखको के उनके जीवन सम्बन्धी लेख है। वे कृपया पं० जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा पढ़े जिसमे उनकी वर्मा जी से भेट का जिक्र है।

वर्मा जी से दयानन्द सरस्वती का पत्र व्यवहार था। उन्हे स्वामी जी ने विद्यार्थी काल मे आर्थिक सहायता दिलाई थी। वर्मा जी ने सावरकर को छात्रवृत्ति देकर उऋण होना लिखा है। सावरकर को बम बनाना वर्मा जी ने सिखाया था। मुन्शी जी ! बम बनाने की बातें आत्म कथा मे जो अंग्रेजी राज्य मे लिखी गई हो, और प्रकाशित हुई हो, नही लिखी जा सकती थी। जो ऐसा सोचता है वह न केवल मूर्खो के स्वर्ग मे है वरन् मूर्खो के मैन्टल हास्पिटल मे जाने योग्य है।

अन्तिम बात:—इस हैडिंग से मैंने श्री सत्यकेतु विद्यालंकार द्वारा इन्डिया आफिस लायब्रेरी लन्दन से वैलूर कोर्ट मार्शल की फाइल मे से कुछ अंश लाने की बात लिखी थी जिसमे एक गिरफ्तार साधु ने बंलोर मे यातना दिये जाने पर बयान दिया था कि विद्रोह का सचालन मूल नामक संन्यासी कर रहा है, जिसका हेडक्वाटर महरौली स्थित मन्दिर है। यही बात योगी के आत्मचरित्र में आई है। श्री सत्यकेतु जी ने उस बयान मे एक अंश यह भी पाया कि सतनामी उदासी साधु हरिद्वार में है, मूल पहिले वहीं रहते थे। सत्यकेतु जी ने इससे अधिक इस स्टेज पर नही बताया कि खोज जारी है। अब मुन्शी जी को ठेस तो यो लगी कि दयानन्द सरस्वती का १८५७ मे भाग लेना सिद्ध हुआ जा रहा है जब कि रायबहादुरो की अजमेर पार्टी से पालित होने के कारण यह बात सिद्ध न होने देने को वे बद्ध परिकर है। पर वे उल्टे जलूल तीन प्रश्नो की वर्षा मुझ गरीब पर और कर डालते है। प्रश्न उनके पूर्वाग्रह तथा अति साधारण विद्यार्थी-कोटि की योग्यता के परिचायक है। उनका भी उत्तर प्रस्तुत है:—

(१) प्रश्न क्या सन्यासी होने के पश्चात् भी स्वामी दयानन्द कभी मूल जी या मूलशंकर के नाम से जाने जाते थे ?

उत्तर क्रान्तिकारियो और राज्य के प्रति विद्रोहियो के बदले हुए "कोड" नाम होते है। भगतसिंह, आजाद, दुर्गाभाभी, इत्यादि सबके दूसरे कोड नाम थे। ध्यान रहे सन् १८५६-५७ मे स्वामी जी न मथुरा मे शिक्षा प्राप्त कर पाये थे, न आर्यसमाज स्थापित कर पाये थे, न वेद मे निष्णात थे।

(२) प्रश्न-क्या वे उदासी साधू थे।

उत्तर—हरिद्वार मे १८५५ और ५६ मे वे दशनामी साधुओ के अखाडे मे रहे थे। और मुन्शी जी ! चन्डी मन्दिर जहा वे ठहरे थे, सनातनियो का था। यहा तक कि १८६३-६४ तक वे शैव मान्यता रखते थे। कृपया जोरडन की थीसिस पढे।

(३) प्रश्न-स्वामी दयानन्द अपने विद्यागुरुविरजानन्द के नाम का ही उल्लेख सर्वत्र करते है न कि दीक्षागुरु पूर्णानन्द का। अब इस पर मुन्शी (मनीषी) जी ने ? चिन्ह क्यो लगा दिया। यह तो वर्णनात्मक वाक्य है, प्रश्नात्मक नही।

अब कोई मुन्शी जी से पूछे कि यदि कहीं और स्वलिखित आशिक आत्मचरित्र मे दीक्षागुरु पूर्णानन्द जी के नाम का स्वामी जी ने उल्लेख न किया होता तो उनका नाम जीवन चरित्र लेखक

कहां से ले आये और १८५८ के कोर्ट मार्शल में विरजानन्द जी का नाम कैसे आता जब उनके आश्रम में दयानन्द सरस्वती १८६० मे गये थे। पर बात तो दूसरी ही है। हरियाणा के जाटों की सर्व खाप के पुराने बस्तों मे से श्री निहालसिंह जी ने गदर के स्रजकों का नाम पूर्णानन्द और और प्रसारकों में विरजानन्द का नाम ढूँढ़ पाया है। अतः इन "सरकारी नौकर" महोदय के मन में साँपलौटने लगा है।

मेरेप्रश्न—अब मुन्शी जी मेरे दो प्रश्नों का उत्तर देने का कष्ट करें:—

(I) आपका यह सदा अभिमत रहा है या नहीं कि आर्यसमाज को राजनीति मे हिस्सा नही लेना चाहिए क्योकि ऐसा करने से आर्यसमाज में सम्मिलित सरकारी नौकरो को आर्यसमाज छोड़ना होगा। क्या हमारी पूर्व पीढ़ी के नेताओ ने जो प्रायः सरकारी नौकर थे, हमें राजनीति से पृथक् रखकर वह स्थिति नही पैदा कर दी कि आर्यसमाज पर क्लर्कों का कब्जा हो गया, त्यागी लोग कांग्रेस मे चले गये। और अंग्रेज यह राज्य उन्हे सोंप गये और हमारी तथा देश की हानि हुई।

(II) क्या आपने अपने आका (शुभचिन्तक) अजमेर के रायबहादुरो के पूर्वज दीवान हरविलास जी शारदा लिखित स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र पढ़ा है जिसमे स्पष्ट लिखा है कि जब स्वामी जी महाराज पूना गये तो गदर के बाद के गद्दी-नशीन पेशवाओ ने यह कह कर दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान आदि के प्रबन्धादि का विरोध किया कि दयानन्द सरस्वती तो (दिवंगत) नाना साहब का एजेन्ट है। यह जीवन चरित्र मेरे और आपके जन्म के पहिले लिखा गया था और आपकी चौकडी के एक सदस्य को गत मास हरिद्वार मे यह डा० गंगाराम गर्ग जी ने दिखा दिया है।

निष्कर्ष

असल मे बात यह है कि मेरी थीसिस [अप्रैल७८] मे स्वामी सच्चिदानन्द जी द्वारा प्रकाशित योगी के आत्मचरित्र के कुछ अंश उद्घृत किये गये थे। थीसिस ६०० पृष्ठ मे छपी थी। उद्घृत अंश दो पृष्ठ मे था। मुन्शी जी ने पत्र लिखकर मुझसे पुस्तक मँगाई। प्रकाशक ने बाद में पुस्तक का मूल्य ५० रुपया मांगा। जहां तक मुझे ज्ञात है, ३ वर्ष बीतने पर भी मूल्य अभी तक नहीं चुकाया है। पहिले तो अपनी चौकड़ी के एक सज्जन से परोपकारी मे लेख छपाया कि गदर वाला अंश झूठा है। अतः डाक्टरेट देकर विश्वविद्यालय ने गलती की है!! फिर चौकड़ी के एक मोदीनगर स्थित सज्जन (दुर्जन) ने उसी समीक्षा का कुछ अंश उद्घृत करके लिखा कि थीसिस लिखने वाला नीच तथा मूर्ख है!!! वह लेख मुझे भेजा गया परोपकारी का लेख मुझे नही मिला अन्यथा मै मुन्शी जी को कोर्ट मे ले जाता। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि स्वामी सच्चिदानन्द जी महाराज से मुन्शी जी की पुरानी लगी चली आती है और मेरी थीसिस प्रकाशन से पूर्व उनमें वाक्युद्ध चला था। श्री स्वामी जी महाराज ने शास्त्रार्थ का चेलेंज भी दिया था। अब जो कोई उनकी पुस्तक का नाम लेता है,

उसे मुन्शी जी अपना शत्रु समझ कर असभ्य भाषा में उसको बुराई छापते, छपवाते रहते है।

परन्तु श्री सम्पादक जी मेरे पास मुन्शी जी का लेख सुरक्षित है, जिसमे उन्होंने दयानंद सरस्वती द्वारा १८५७ के गदर मे भाग लेने की सम्भावना मान ली है। आर्य समाज कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता ने एक लेख प्रतियोगिता संचालित की थी, विषय था—'भारत के राष्ट्रीय संग्राम में आर्यसमाज का योगदान'। मुन्शी जी ने इसमे लेख भेजकर १००० रुपये का पारितोषिक प्राप्त किया था। उसमें यह सब बातें सोत्साह स्वीकार की थी !!

(निवेदक=डॉ० रामेश्वरदयालगुप्त - M.A. B.Sc. Engineer),
अध्यक्ष –त्रैतवादीय आर्य पीठ हरिद्वार
एवं छात्र गुरुकुल विश्वविद्यालय, एम.ए., वेद साहित्य, द्वितीय वर्ष, आयु–६५ वर्ष

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो—
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेवविदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
सन्दीप्ते भवने तु कूपखनन प्रत्युद्यमः कीदृशः ।।

भर्तृहरि—वैराग्य शतक, ७६

जब शरीर स्वस्थ है, रोगरहित है, जब तक बुढापा दूर है, जब तक इन्द्रियों– हाथ-पाव आदि की शक्ति बनी हुई है; जब तक आयु है, तब तक अपने कल्याणार्थ विद्वान् को महान् प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

उपमा कालिदासस्य

डॉ० राकेश शास्त्री

संस्कृत विभाग,

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

कविता-कामिनीकान्तः, कविकुलललामभूतः, कालिदासः संस्कृत-साहित्याकाशे अम्बरमणिरिव प्रकाशते इति सुविदितमेव काव्यकलानुशीलनपराणां विद्वद्वराणाम्। तस्य काव्यसौन्दर्यं प्रेक्षं-प्रेक्षं प्रशंसन्ति सहृदयाः सुधियस्तस्य कलाकौशलम्। अस्य सुललितपदविन्यासगुम्फितानि माधुर्यगुणोपेतानि काव्य-कुसुमानि कस्य सहृदयस्य मनः प्रीतिं नोपजनयन्ति।

महाकवेः कालिदासस्य काव्यशैल्या अनेकासु विविधासु विशेषतासु इयमपि एका प्रमुखा विशेषता यत् तस्य कृतिषु अलंकाराणां प्रयोगः स्वाभाविकरूपेण एव दृश्यते कृत्रिमरूपेण केवलम् अलंकाराणां प्रदर्शनाय तेषां प्रयोगः तत्र नास्ति। फलतः तस्य अलंकारयोजना अतीव प्रभावोत्पादिका जाता। शब्दा-लंकारेषु अनुप्रासः' तस्यप्रियः अलंकारः, किन्तु नायं विलष्टकल्पनया कृत्रिमरूपेण आनीतः, अपितु स्वा-भाविकरूपेण स्वत एव समागतः।

उपमा विषयेत्वयं कविकुलगुरुरितरान् अखिलान् कवीश्वरानतिशेते। उपमा त्वस्य निसर्गसिद्धा प्रेयसीव प्रतीयते। अस्य काव्येषु उपमालता यादृशी पुष्पिता पल्लविता च न तादृशी कवीश्वराणामन्येषा काव्येषु। अर्थालंकारेषु 'उपमा' कालिदासस्यातिप्रियः अलंकारोऽस्ति। अनेनैव तस्य विषये विद्वत्सु एषा प्रसिद्धिः सञ्जाता—

उपमा कालिदासस्य

अस्य नेदं तात्पर्यं यत्कालिदासेन केवलमुपमालंकारस्यैव प्रयोगो विहितः। सर्वेऽपि नामाऽलङ्कारा-स्तस्य कृतिषु परया चमत्कृत्या प्रयुक्ता लक्ष्यन्ते, परं यादृशीतर-कविषु अनुपलक्षित-विशेषावैचित्र्याऽति-शयाऽऽवहोपमा न तादृशोऽन्यः कोऽप्यलंकारः।

का नामोपमा? कथं च एषा उपकर्त्री काव्यस्य? साहित्यदर्पणकारविश्वनाथानुसारम्—

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः॥ साहित्य दर्पण १०–१४

अर्थात् वस्तुद्वयस्य वैधर्म्यं विहाय साम्यमात्रं उच्यते चेत्, वाक्यैक्ये तर्हि सा उपमा। उपमा एषा सौदामिनीव विद्योतते विपुले वाङ्मये। एषा काव्यशरीरे महती मञ्जुलतां समादधाति। कालिदासस्य

उपमा प्रयोगेऽपूर्वं वैशारद्यम् । उपमासु न केवलं रम्यता, यथार्थता, पूर्णता, विविधता चैव, अपितु सर्वत्रैव लिङ्गसाम्यमौचित्यं च लक्ष्यते। लिङ्गसाम्यं औचित्यस्य च समाश्रयणेन काचिद् अपूर्वा सम्पद्यते चारुता उपमासु। कालिदासप्रयुक्ते उपमालंकारे परिगृहीतानि उपमानानि जगतः व्यापकक्षेत्रादेव गृहीतानि सन्ति।

कालिदासस्य कृतिषु शतत्रयादधिका उपमा-प्रयोगाः। पूर्णोपमाप्रभृतीनां प्रकाराणां का कथा, मालोपमा-रशनोपमा-सदृशा विच्छित्तिविशेषकराः प्रकारा अपि तासु बाहुल्येन। वस्तुतः कालिदासस्य उपमानां पूर्णाछटा तु तस्य ग्रन्थानामनुशीलनेन एव प्राप्तुं शक्यते, किन्तु पुनरपि तासां एकमाभासनं संक्षिप्तं दर्शनं वा कतिपयैः निम्नै उदाहरणैः प्राप्तुं शक्यते—

कुमार सम्भवे पञ्चमेसर्गे पार्वत्याः सुन्दरं अधरं दृष्ट्वा गम्भीर अपि शिवः तथैव विचलितोऽभवत् यथा चन्द्रोदयारम्भे समुद्रः विचलितः भवति—

हरस्तु किञ्चिद् परिलुप्त धैर्य-
श्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे
व्यापारयामास विलोचनानि॥ ३।६७

गुणगतसाम्यस्य कियत्सुन्दरमुदाहरणमेतत्। 'अधीरता' गुणस्य उपमेये शिवे उपमाने च समुद्रे साम्यं वर्तते।

पञ्चमे सर्गे एव शिवं दृष्ट्वा कम्पमाना पार्वती स्वं पदं उद्धृतं उद्धरन्ती एव अस्थात्, अथ च पर्वतावरुद्धा नदी इव न स्थिरा एव भवितुमशक्नोत्, न च चलितुं एव—

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि-
र्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराज तनया न ययौ न तस्थौ॥ ५।८५

अत्र कियन्तीमुपयुक्तां उपमामाश्रित्य कविना पार्वत्याः लज्जासौकुमार्यादयः भावाः व्यक्ताः अन्येन केनापि प्रकारेण केनापि उपमानेन वा एतेषां भावानां व्यक्तीकरणं भवितुं न शक्नोति।

तथा च रघुवंशे—

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन
प्रत्युद्गता पार्थिव धर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिन-
क्षपामध्यगतेव सन्ध्या॥

अवसानोन्मुखे दिवसे एकतः पश्चिमायामाशायामुपेयुषि दिनकरे अपरतश्च समायान्त्या रात्रौ तदुभयमध्यगतां सन्धिवेलां नरेन्द्रतत्पत्न्योश्च मध्यगतां धेनुं दिनक्षपामध्यगतया सहोपमिमानः कवीश्वरोऽयं किमुपमासौष्ठवस्य परां कोटिं न गतवान् ? पुनश्च–

अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां
कुशाग्रबुद्धे ! कुशली गुरुस्ते।
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं
लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः ॥ रघु ५।४

यथा इदं भौतिकं जगत् उष्णरश्मेः सूर्यात् चैतन्यमाप्नोति तद्वत् त्वयापि हे ! व्रतिन्, सूर्यतुल्यगुरोरशेषं ज्ञानमधिगतं कच्चित् तव गुरुदेवः कुशली खलु ? लिङ्गसाम्योपमा च दृश्यतेऽत्र।

विषयेऽस्मिन् एतच्च स्मरणीयम्, यत् कविः औपम्यमात्रं प्रस्तोतुं कमपि पदार्थं न उपमिमीते। वस्तुतस्तस्य प्रयोजनं प्रभावसंवेदनं स्वरूप-ग्राहणं वा भवति। वर्णनैरस्फुटमापि हि वस्तु तादृशोपमानोपन्यासेन प्रत्यक्षकल्पं भवति।

अभिज्ञानशाकुन्तले वन्दमाना शकुन्तलां कश्यप आशीर्भियोजयन् आह–

आखण्डल–समो भर्ता जयन्त–प्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमी सदृशी भव ॥ अभि० ७।२८

अत्र दिव्यपरिवारेण सहोपमितं दुष्यन्त-कुल-प्रभावातिशयं प्रस्तौति।

एवं शास्त्रीया उपमा अपि वस्तु-स्थिति-प्रत्यायिका भवन्ति। यथा वालिनः पदे सुग्रीवाऽभिषेकं कविर्धातोः स्थान आदेशेनोपमिमीते—

स हत्वा वालिनं वीरस्तत्पदे चिरकांक्षिते।
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत् ॥

मीमांसाश्रयिणी च यथा–दिलीपस्य पत्नी सुदक्षिणा यज्ञस्य पत्नी दक्षिणा इव वर्णिता। एतेन दक्षिणया यज्ञस्येव सुदक्षिणया दिलीपस्य पूर्णता कविना सूचिता। तथैव नन्दिन्या वत्स–होमार्थविधिशेषं दुग्धं दिलीपो रक्षिताया उर्व्याः षष्ठांशमिव पिपासति इति, इयं उपमाऽर्थशास्त्रानुसारिणी। नन्दिन्या अनुगामिनी सुदक्षिणा च श्रुत्यनुगामिन्या स्मृत्या तुलिता—

तस्याः खुरन्यास पवित्र पांसुमपांसुलानां धुरिकीर्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी, श्रुतेरिवाऽर्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥

अनेकदा कविना सूक्ष्मं वस्तुस्थूलेन मूर्तेन वा स्थूलं च सूक्ष्मेण अमूर्तेन वा उपमितम् यथा शकुन्तला मूर्तिमती सत्क्रियेव वर्णिता

"त्वमर्हतां प्राग्रहरः स्मृतोऽसि नः शकुन्तला मूर्तिमतीव सत्क्रिया ।"

अस्य उत्प्रेक्षा-निदर्शन-रूपेण अभ्युपगमे तु

"बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास ।"

इत्युदाहरणं द्रष्टव्यम् । अत्र हि वैदर्भाधिकृत-निर्दिष्ट भवनमधितिष्ठन् रघु-सूनुरजो यौवनमधिक्रामता कामेनोपमितः । अमूर्तस्य च मूर्तेनोपमितौ—

"राज्यं स्वहस्त-धृत-दण्डमिवाऽऽतपत्रम्"

इत्युदाहार्यम् । अत्रहि निरन्तरं प्रजाक्षेमाभिरततया सुखापेक्षया विशेषेण राज्ञः क्लेशाऽऽवहं राज्यं छायादानाऽपेक्षया अधिकतर भार-वहन-क्लेशावहत्त्वात् स्वहस्तधृतदण्डेन छत्रेण उपमितम् । एवमेव –

'निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः'

इति पद्येऽमूर्ता वृद्धस्य बुद्धिर्निर्वाणोन्मुखस्य दीपस्य क्षणं प्रदीप्तया दशया मन्दभासा वा शिखया समीक्रियते ।

वागर्थाविव सपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ ।। रघु १।१

अत्रापि च मूर्तौ भवानी-शंकरौ वागर्थाभ्यामुपमीयेते,तद्वद् अव्याभिचरित्वं च शब्दार्थयोर्व्यज्यते ।

कालिदासप्रयुक्तासु उपमासु एका उपमा अतीव प्रसिद्धा अस्ति सा च इयती उपयुक्ता अस्ति यत् सा कालिदासस्य विशेषणं विरूदं वा इव यदा-कदा बुधैः प्रयुज्यते । तस्या स्वरूपं एतादृशं अस्ति यत् स्वकीये स्वयवरे उपस्थितान् राज्ञः क्रमशः पश्यन्ती पतिवरा इन्दुमती एकं राजानं दृष्ट्वा तं विहाय अन्यं राजानं प्रति अग्रतः सरति-अस्या प्रक्रियायां सा यं राजानं विहाय अग्रतः गच्छति, स तथैव विवर्णः कान्तिहीनः वा भवति यथा रात्रौ राजमार्गेण सञ्चरन्त्या दीपशिखया पृष्ठतः त्यक्तं विहीनं वा भवन अन्धकारग्रस्तं जायते—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीताय पतिवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।।

कियतो यथार्था सहैव च ललिता उपयुक्ता, रमणीया, व्यञ्जिका अपि एषा उपमा वर्तते । अनेनैव कारणेन केचनबुधाः कालिदासं 'दीपशिखा कालिदासः' इत्यपि तस्य विरूदं इव प्रयुञ्जते ।

कालिदासीयानाँ उपमानां उपरि प्रस्तुतं संक्षिप्तं विवरणं निदर्शन-मात्रम् । वस्तुतः तस्य कृतिषु एव

परस्पराधिक-सौन्दर्य-युक्तानां विविधानां उपमानां छटा दर्शनीया, यस्याश्च दर्शनेन स्पष्टं भविष्यति यत् तस्य उपमाः अतीवयथार्थाः प्रस्तुतानुरूपाः, प्रसंगानुकूलाश्च सत्य एव अतीव रमणीयाः सन्ति।

अतः केनापि समीक्षकेण सत्यमेव उक्तम् -

उपमा कालिदासस्य

इति

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

भर्तृहरि, नीतिशतक, ८४

नीति में निपुण व्यक्ति चाहे निन्दा करें अथवा प्रशंसा करे। लक्ष्मी आये या इच्छानुसार चली जाये, मरण आज ही हो अथवा युग के पश्चात् हो। धैर्यवान् व्यक्ति न्याय के पथ से विचलित नही होते।

पातितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥

हाथ के आघात से गिरायी हुई गेंद उछलती ही है। प्रायः सच्चरित्र लोगों की विपत्तियाँ भी अस्थायी होती है।

भर्तृहरि, नीतिशतक, ८६

वेदों में पर्यावरण: एक समीक्षा

जगदीश प्रसाद विद्यालंकार
पुस्तकालयाध्यक्ष
गु० कां० वि० विद्यालय
हरिद्वार

प्राकृतिक वातावरण की रक्षा—

"पर्वतो के निकट तथा नदियों के सङ्गम स्थल पर विचार एवं चिन्तन करने से बुद्धि उत्तम होती है1 अथर्ववेद मे एक स्थल पर कहा गया है रोगी व्यक्ति को स्वास्थ्य लाभ के लिए पर्वत पर ले जाना चाहिए तथा वनस्पतियो का सेवन कराया जाना चाहिए।

अथर्ववेद का उपर्युक्त मंत्र यह निर्देश देता है "कि रोगियों को नगरों में मत रक्खो, जन समूहों में मत रक्खो परन्तु पहाड़ पर ले जाओ क्योंकि अधिकांश रोग, अँधेरे में विषावत वायु से तथा सूर्य-प्रकाशहीन स्थलों पर पैदा होते है।2"

अथर्ववेद मे ही एक स्थलपर पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम हेतु मानव को निर्देश दिया गया है कि वह अधिकाधिक "मित्र और रोगनाशक जल 3" 'दोनों मिलकर वृद्धावस्था के पश्चात् मरने वाला करे 4" इसी प्रकार "सूर्य एवं पृथ्वी मिलकर के 5" जन वृद्धावस्था के पश्चात् मरने वाला करे6"।

उपर्युक्त स्थलों पर एक ही विचार देखने को मिलता है जिसके अनुसार प्राणी मात्र को सूर्य, पृथ्वी, जल के सन्निकर्ष मे रहकर आरोग्य की प्राप्ति करनी चाहिए। मिट्टी, पानी एवं प्रकाश ही वायु-मंडल को पर्यावरण के खतरे से मुक्ति दिला सकते है।

१– उपह्वरे गिरीणां संङ्गमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥ यजु २६–१५
२– गिरीमेनाँ आवेशय कण्वाञ्जीवितयोपनान्।
तांस्त्वं देवि पृश्नि पर्ण्य गिरिवा नुदहभिहि। अथर्व, काण्ड २–२५–१–५
३– मित्रः रिशादसः वरुणः वा।
४– संविदानौ एनं जरा मृत्युं कृणुतां।
५– द्यौः पिता पृथिवी माता संविदाने।
६– त्वा जरा मृत्युं कृणुतां। अथर्व १-२८-२

हृदय विकार दूर करना —

"हृदय विकार तथा पीलिया रोग प्रातःकालीन सूर्य प्रकाश कीजिये-किरणों के सेवन करने से दूर हटता है।7"

सूर्य प्रकाश लीजिये–प्रदूषण से बचिये—

सूर्य प्रकाश के समान ही वायु का महत्त्व है। यदि वायु अशुद्ध हुआ तो मनुष्य में रोगी होने में बिल्कुल देरी नहीं लगेगी। वनस्पतियों के सेवन करने से शरीर की पुष्टि होती है।8

उदय होने वाला सूर्य—

"उदय होने वाले सूर्य की किरणों से पृथ्वी का वातावरण विशुद्ध रहता है। इसी प्रकार से अस्त होने वाली किरणों से पृथ्वी विषाक्तताओं से रहित होती है।9" सूर्य किरणों के सेवन से विटामीन 'डी' अजस्ररूप में प्राप्त होता है।

पशुपालन से प्रदूषण पर नियन्त्रण संभव—

अथर्ववेद में गोबर, गौशाला आदि को वायुमंडल की शुद्धि हेतु परम उपयोगी बतलाया है। देखिये एक मंत्र क्या कहता है—

"गाय से उत्पन्न गोबर जहाँ उर्वरा शक्ति को बढ़ाता है, वहाँ दूध शरीर को निरोग रखता है। निर्भय रूप से विचरण करने वाली गौओं के स्थान पर रहने से दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है।१०.।

जल से ही जीवन है—

पवित्र जल से मुख, नासिका, नेत्र, बाहु आदि अंगो के स्पर्श का विधान विभिन्न वैदिक संस्कारों में उल्लिखित है।"जलों में अमृत है, जलों में रोग निवारक शक्ति है।11" इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर आता है, "जल शरीर को दोष रहित करता है। वहाँ वायुमंडल में प्रदूषण

७- अनुसूर्यमुदयन्तांहृद्योते हरिमर्चते।
गौरो हितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि ॥ अर्थव, कांड-१-२२-१

८- शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशंनिशंनिकृत्या अरः। अथर्व २-५-१

६- उद्यन्नादित्यः कर्मान्हन्तु, निम्रोचन्हन्तु रश्मिभि॥ अथर्व, कांड-१

१०- संजग्माना अनिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।
विभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन॥ अथर्व ३. १५.३.

११- अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्। अथर्व १-४-४

को रोकता है12"। उक्त विचार वेद के इस मंत्र में सृष्टि के पाप को दूर करने से अभिप्रेत है। यजुर्वेद में तो एक स्थल पर मनुष्य को जल प्रदूषण को रोकने हेतु निर्देश दिया गया है। देखिये जल प्रदूषण को रोकने हेतु कितना स्पष्ट कहा गया है (अपः ओषधी मा हिंसीं) उपयोग आने वाला जल कलुषित न हो। वनस्पतियों एवं स्वच्छ जल प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही उपयोग में हो। वन एवं वनस्पतियों का संरक्षण किया जाना प्रदूषण को रोकने हेतु परम आवश्यक है।

पर्यावरण संरक्षण कैसे—

वेदों में शुद्ध वायु की महत्ता का स्थान-स्थान पर प्रतिपादन किया गया है। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है "जिनका साहचर्य वायु करता है वे आरोग्य को प्राप्त होते हैं। 13" वेदो मे स्थान-स्थान पर यह संकेत उपलब्ध होते हैं कि पशुपालन एवं यज्ञ करने से वातावरण की शुद्धि होती है। "वनस्पतियों के बढ़ने से वायु विशुद्ध होती है।" अथर्ववेद में कहा गया है (धान्यं रस आहा्र्तं) वनस्पतियों के सेवन से (अस्माकं वीरा आहूताः) "हमारे में वीरता पैदा होती है।"

अथर्ववेद के ही एक स्थल में जल को चिकित्सक की संज्ञा दी गयी है। 'जल चिकित्सा' का विचार वेदों में सर्वत्र उपलब्ध है। उपर्युक्त मंत्र में 'जलाष भेषज' शब्द का प्रयोग किया गया है, जो जल चिकित्सा का भाव बतला रहा है। अथर्व २-२८-१-३ इसी प्रकार एक अन्य मंत्र मे 'जल को उत्तम औषधि बतलाया गया है तथा उसे (विश्वस्य भेषजीः) सब रोगो की राम बाण दवा से अभिप्रेत किया गया है। 14

वन एवं वनस्पतियों का संरक्षण आवश्यक—

अथर्ववेद में तो वनस्पतियों को जीवन के लिये (उत्तराम्य इत् उत्तरा) "श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ-कहा गया है।" दीर्घायु प्राप्ति हेतु पर्यावरण की विशुद्धि पर जोर देते हुए कहा गया है।
"सूर्य, जल, वनस्पति, मिट्टी आदि से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त हों। 15"

प्रदूषण को रोकथाम यज्ञ से—

पर्यावरण प्रदूषण के निदान में अग्निहोत्र का चमत्कारिक स्थान है। वेदों में जगह-जगह पर मानव समुदाय को पर्यावरण की शुद्धि हेतु अग्नि होत्र किये जाने का निर्देश दिया है। अथर्ववेद के

१२- इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत्।
१३- येषां सहचारं वायुः जुजोष।
१४- आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वां मुञ्चन्तु क्षेत्रियात। अथर्व ३-७-५
१५- इन्द्रः अग्नि सविता वृहस्पतिः ते शतं।

एक मंत्र में कहा गया है। "हे मनुष्य ! मैं तुम्हें हवन से नया जीवन प्रदान करता हूँ। 16" बढ़ता हुआ हवन करते हुए सौ शरद् ऋतुओ तक जीता रह। 17" इसी प्रकार एक निम्न मंत्र में पर्यावरण शुद्धि हेतु निम्न उपाय दिग्दर्शित किये गये है। "गौ के घी से हवन करने से, ग्रामवासियों द्वारा पशुपालन करने से घरो का वातावरण विशुद्ध होता है। 18"

यज्ञ से वर्षा—

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका मे ऋषि दयानन्द लिखते है-"यज्ञ से जो भाप उठता है, वह भी वायु और जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत् को सुखी करता है।" आगे ऋषिवर लिखते है- "शुद्ध जल और वायु के द्वारा अन्नादि औषधि भी अत्यन्त शुद्ध होती है।" शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से कहा गया। "अग्नि से धूम, धूम से बादल और मेघ से वृष्टि होती है। 16"

अथर्ववेद में भी इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। "वायु के संघर्ष से मेघों में बिजली उत्पन्न होती है, वह ऋण और धन रुप में पैदा होकर पुनः परस्पर मिलती है और कड़कती है। उससे उससे जलों में विशेष प्राणशक्ति और मेघो मे जलो की वृद्धि भी होती है, वनस्पतियो का इससे संवर्धन होता है। 20"

"आज विश्व मे अणुविस्फोटो एवं परमाणु विकिरणों के कारण सारा वायुमंडल दूषित हो रहा है। वातावरण के प्रदूषण की रोकथाम हेतु वायु मडल की शुद्धि के लिये अग्नि होत्र किया जाना बहुत उपयोगी हो सकता है। वेद की यज्ञ सुगन्धि विचार पर अपना मत प्रकट करते हुए डॉ० हार्टनिग ने लिखा है-"अफ्रीका के जंगल मे घास फूंस के बडे भारी ढेर के जलाने से, जहाँ वर्षा की आशा न थी, वहाँ पानी बरसने लगा।"

वेद मे एक मंत्र आता है, जिसमें कहा गया है कि-"यज्ञ करने से वातावरण उसी प्रकार विशुद्ध होता है जैसा बच्चा दोष एवं पाप से रहित होता है। 21"

१६– मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाम।

१७– वर्धमानः शतं शरद. जीव।

१८– इजयारपद घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रतिहृत्या गृभाय। ये ग्राम्याः पशवो विश्वरुपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्त। अथर्व ३-०-६

१९– अग्नेव धूम्ये जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिः। शतपथ ब्राह्मण

२०– अमा३ग्निरस्तनूभिः संविदानो च औषधिनामधिया बभूव।
स न वर्षं वनुतां जात वेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि॥ अथर्व ४-१५-१०

२१– सखाय आनिषीदत्त पुनानाय प्रभायत। शिशुं न यज्ञैं परिभूषत क्षिये॥

लीलावती में उच्च गणित के सूत्र

विजयेन्द्र कुमार

गणित विभाग (विज्ञान महाविद्यालय)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

गणित के ऐसे बहुत से सूत्र है जिन्हे हम विदेशी गणितज्ञो के सूत्र मानकर पढ़ते है, लेकिन वह वास्तव में भारतीय प्राचीन ग्रन्थो मे भी पाये जाते हैं। कितनी ही बार ऐसा होता है कि वही सूत्र जो हमारे ग्रन्थो मे किसी ढंग से लिखा होता है, विदेशी विद्वानों के द्वारा अपने ग्रन्थो में कुछ और ढंग से लिखा हुआ होता है। प्रस्तुत ऐसे ही कुछ सूत्रो के विषय मे विचार है।

कुछ संख्याएं १, २, ३, ४, ५, ६,………न के योग पर विचार करते है। हम जानते हैं कि ये संख्याऐ समान्तर श्रणी में है। तदनुसार योग $\frac{\text{न}}{\text{२}}(\text{न}+\text{१})$ है। लीलावती मे इसके लिये निम्नलिखित नियम दिया हुआ है।

संकपदध्नपदार्धमथैका द्यङ्कयुतिः किल संकलिताख्या ।

सा द्वियुतेन पदेन विनिध्नी स्यात्त्रिहृता खलु संकलितैक्यम् ॥

अर्थात् जिस संख्या तक का योग निकालना है, उस संख्या में एक जोड़कर इस संख्या से गुणा करो तथा दो से भाग दो।

इन्ही संख्याओ १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, न पहली संख्या तक संचयी योग १, इस प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, पाचवी आदि संख्याओं तक क्रमशः योग १, ३, ६, १०, १५, २१, २८, ३६, ४५……$\frac{\text{न}(\text{न}+\text{१})}{\text{२}}$ आदि हुआ।

इन संचयी योगों के योग ज्ञात करने की उच्च गणित में निम्न विधि है-

$$\text{योग}\sum\left(\frac{\text{१}}{\text{२}}\text{न}(\text{न}+\text{१})=\frac{\text{१}}{\text{२}}\sum\left(\text{न}^{\text{२}}+\text{न}\right)\right)$$

$$=\frac{\text{१}}{\text{२}}\left(\sum\text{न}^{\text{२}}+\sum\text{न}\right)\quad\frac{\text{१}}{\text{२}}\left[\frac{\text{न}(\text{न}+\text{१})(\text{२न}+\text{१})}{\text{६}}+\frac{\text{न}(\text{न}+\text{१})}{\text{२}}\right]$$

$$=\frac{\text{१}}{\text{२}}\,\frac{\text{न}(\text{न}+\text{१})}{\text{२}}\left[\frac{\text{२न}+\text{१}}{\text{३}}+\frac{\text{३}}{\text{३}}\right]=\frac{\text{१}}{\text{२}}\left[\frac{\text{न}(\text{न}+\text{१})}{\text{२}}\right]\frac{\text{२}(\text{न}+\text{२})}{\text{३}}$$

$$=\text{न}\left(\frac{\text{न}+\text{१}}{\text{२}}\right)\left(\frac{\text{न}+\text{२}}{\text{३}}\right)\quad ---(\text{१})$$

लीलावती ने उपरोक्त श्लोक के दूसरे भाग के अनुसार जितने पद तक के संचयी योगों का योग ज्ञात करना है, उस तक के संचयी योग को संख्या में २ जोड़कर उससे गुणा किया। फिर उस गुणनफल को तीन से भाग दिया जो उपरोक्त प्राप्त परिणाम (१) के लिए तुल्य है।

उच्च गणित मे हम जानते हैं कि किसी संख्या न तक के वर्गों का योग अर्थात्

$$१^२ + २^२ + ३^२ + ४^२ \ldots\ldots\ldots + न^२ \quad \text{का मान}$$

$$\frac{न(न+१)(२न+१)}{६} \text{ सूत्र से प्राप्त होता है।} ---(२)$$

इसी प्रकार संख्याओं के घनों का योग

$$\text{अर्थात्} \quad १^३ + २^३ + ३^३ + ४^३ \ldots\ldots\ldots न^३ \quad \text{के लिये}$$

$$\text{सूत्र} \quad \left(\frac{न(न+१)}{२}\right)^२ -------(३)$$

इन सूत्रों के लिये लीलावती ग्रन्थ में निम्न मन्त्र दिया हुआ है—

द्विघ्नपदं कुयुतं त्रिविभक्तं
संकलितेन हतं कृतियोगः।
संकलितस्य कृतेः सममेका
घङ्कधनैक्यमुदाहृतमाद्यैः ॥

मंत्र के प्रथम भाग में यह बताया गया है, कि जिस संख्या तक के वर्गों का योग ज्ञात करना है, उसके दो गुने में एक जोड़कर तीन से भाग दो। इस प्रकार प्राप्त परिणाम को उस सख्या तक के संचयी योग $\left(\text{संकलित अर्थात्}\ \frac{न(न+१)}{२}\right)$ से गुणा करो। इस प्रकार करने से सूत्र (२) प्राप्त होता है।

मंत्र के दूसरे भाग में बताया गया है, कि किसी संख्या तक के घनों का योग ज्ञात करने के लिए संकलित अर्थात् संख्याओं का संचयी योग $\left(\frac{न(न+१)}{२}\right)$ का वर्ग करो।

यदि समान्तर श्रेणी में न संख्यायें।

अ, अ+द, अ+२द, अ+३द…… आदि पर विचार करें तो इन संख्याओं का योग

$$\frac{न}{२}\left(२अ+(न-१)द\right) ---------(४)$$

लीलावती ग्रन्थ में इसके संबंध में यह मन्त्र दिया है ।

व्येकपदघ्नचयो मुखयुक्स्या-
दन्त्यधनं मुखयुग्दलितं तत् ।
मध्यधनं पदसंगुणितं त-
त्सर्वधनं गणितं च तदुक्तम् ॥

अर्थात् जो पदों की संख्या है उसमें से एक कम करके नित्य बढ़ने वाली राशि से गुणा करो, उसमें से सबसे पहले वाली राशि जोड़ दो, इस प्रकार अन्तिम राशि प्राप्त होगी । अन्तिम राशि मे आदि राशि जोड़ कर दो से भाग देने पर मध्य राशि प्राप्त होगी । मध्य राशि को पदो की संख्या से गुणा करो, इस प्रकार सब राशियो का योग प्राप्त होगा ।

इस नियम के अनुसार श्रेणी

अ, अ+द, अ+२ द, अ+३ द, अ+४ द.............. न पद पर विचार करने पर

अन्तिम राशि $\quad$ अ+(न-१) द

मध्य राशि $\quad \frac{१}{२}\left(अ+\left\{अ + (न-१)द\right\} \right)$

पदों का योग $न \times \frac{१}{२}\left(२ अ+(न-१) द\right)$

$$=\frac{न}{२}\left(२अ+(न-१) द \right)$$

इस प्रकार सूत्र (४) प्राप्त हो गया ।

अब गुणोतर श्रेणी में कुछ संख्यायें

$$अ \quad अर, अर^{२}, अर^{३} \cdots\cdots\cdots\cdots अ र^{न-१}$$

पर बिचार करे । इन पदों के योग के लिये सूत्र—

$$\frac{अ\left(र^{न}-१\right)}{र-१} \cdots\cdots\cdots\cdots \qquad (५)$$

दिया गया है ।

ग्रन्थ लीलावती में इस तरह का एक उदाहरण दिया गया है ।

मन्त्र इस प्रकार है—

पूर्वं वराटकयुगं येन द्विगुणोत्तरं प्रतिज्ञातम् ।
प्रत्यहमर्थिजनाय स मासे निष्कान्ददाति काति ॥

इसके अनुसार किसी दाता ने प्रथम दिन दो कौडी देकर यह प्रतिज्ञा की कि तीस दिन तक प्रतिदिन दो-दो गुना धन दूंगा, तो बतलाओ उसने तीस दिन मे कितना धन दिया ? इसका हल निम्न प्रकार किया गया है—

प्रथम संख्या—	२	
वर्ग करने पर—	४	$(=२^{२})$
दो से गुणा करने पर—	८	$(=२^{३})$
वर्ग करने पर—	६४	$(=२^{६})$
दो से गुणा करने पर—	१२८	$(=२^{७})$
वर्ग करने पर—	१६३८४	$(=२^{१४})$
दो से गुणा करने पर—	३२७६८	$(=२^{१५})$
वर्ग करने पर—	१०७३७४१८२४	$(=२^{३०})$

योग ज्ञात करने के लिए अंतिम राशि मे से एक कम करके सर्वप्रथम वाली राशि से गुणा किया अर्थात् वांछित योग— २[१०७३७४१८२४-१]

= २१४७४८३६४६

सूत्र (५) से प्राप्त परिणाम $\frac{अ[र^{न}-१]}{र-१} = \frac{२[२^{३०}-१]}{२-१}$

= २१४७४८३६४६

इस प्रकार लीलावती ग्रन्थ मे दिये हुए तरीके से तथा ज्ञात गणित के सूत्र से एक से ही परिणाम प्राप्त होते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ (१) लीलावती — भास्कराचार्य कृत
(२) उच्च बीजगणित — हाल तथा नाइट

—०—

जन्म शताब्दी के अवसर पर—

अमर साहित्यकार चन्द्रधर शर्मा गुलेरी व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डा० भवानीलाल भारतीय
अध्यक्ष, महर्षि दयानन्द अनुसंधान पीठ
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

"उसने कहा था" कहानी के अमर लेखक गुलेरी जी की मात्र तीन कहानिया ही उपलब्ध होती है। परन्तु इन कहानियो को लिख कर ही वे विश्व कथा-साहित्य मे अपना नाम अमर कर गये। स्तरीय लेखन चाहे मात्रा मे थोडा ही क्यो न हो, महत्वपूर्ण होता है, न कि हजारों पृष्ठों मे लिखा गया स्तरहीन साहित्य। तभी तो अध्यापक पूर्णसिंह कुछ निबंध लिखकर ही हिन्दी निबंधकारों की अग्रिम पंक्ति मे विराज सके तथा गुलेरी जी की तीन कहानियों ने ही उन्हें अद्वितीय कथाकार का पद प्राप्त कराया।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के पूर्वज हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले के गुलेर ग्रामवासी थे। वे सारस्वत ब्राह्मणो के उस कुल में उत्पन्न हुए थे जो वंश परम्परा से कागड़ा के कटोच क्षत्रिय राजाओं का गुरु रहा था। गुलेरी जी के पिता प० शिवराम गुलेरी जयपुर के महाराजा सवाई रामसिह के राज-पंडित तथा राजस्थान की काशी कही जाने वाली जयपुर नगरी मे उच्चस्तरीय संस्कृत शिक्षा के आद्य प्रवर्तकों में थे। इन्ही पं० शिवराम के घर ७ जुलाई १८८३ को चन्द्रधर शर्मा का जन्म हुआ। चन्द्रधर जी का शिक्षा काल अत्यन्त जाज्वल्यमान तथा तेजस्वी रहा। घर में संस्कृत प्रधान वातावरण होने के कारण जहां वे एक ओर व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि में व्युत्पन्न हो सके, वहां कालेज शिक्षा मे भी वे सर्वदा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते रहे। १६०३ में प्रयाग विश्वविद्यालय से गुलेरी जी ने अंग्रेजी, मनोविज्ञान, आचार शास्त्र तथा संस्कृत लेकर प्रथम श्रेणी में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

विद्यार्थी अवस्था में ही उनके ज्योतिष ज्ञान का लोहा मान लिया गया और जयपुर की ज्योतिष वेध शाला के मंत्रोद्धार के कार्यक्रम को सुचारू रूप से सम्पन्न करने हेतु उन्हें कर्नल जैकब तथा केप्टन गैरट के सहायक के रूप ने चुना गया। इस कार्य के परिणाम स्वरूप एक महत्वपूर्ण ज्योतिष विद्या विषयक ग्रन्थ प्रकाश में आया, जो गुलेरी जी के सहयोग से ही लिखा गया था। शीघ्र ही इतिहास, पुरातत्त्व, भाषा विज्ञान, साहित्य आदि के क्षेत्रों में गुलेरी जी का अवदान व्यक्त होने लगा। 'इण्डियन

एन्टीक्वेरी' मे उनके शोध विषयक महत्त्वपूर्ण लेख छपे तथा भारत विद्या विशारदों में उनकी गणना होने लगी। यहां यह ध्यातव्य है कि गुलेरी जी ने प्राचीन पद्धति से वैदिक तथा कलासिकल संस्कृत साहित्य का जहा विस्तृत अध्ययन किया था, वे वहां अंग्रेजी भाषा के विशिष्ट विद्वान् होने के नाते शोध एवं अनुसंधान की उन नवीन प्रक्रियाओ से भी भली भाति परिचित थे, जिनका उपयोग आधुनिक गवेषणाओ में किया जाता है।

१९०७ मे गुलेरी जी को मेयो कालेज अजमेर में जयपुर राज्य के राजकुमारो एवं सामन्तपुत्रों का संरक्षक बनाया गया। १९१६ में वे कालेज मे संस्कृत के प्रधान पण्डित पद पर नियुक्त हुए। १९२० मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर पं० मदनमोहन मालवीय जी ने गुलेरी जी को विश्व-विद्यालय में प्रोफेसर पद पर नियुक्त किया। यहां वे मणिचन्द्र नंदी चेयर (पीठ) के अध्यक्ष नियुक्त किये गये, जो भारतीय संस्कृति, प्राच्य विद्या, पुरातत्त्व तथा प्राचीन इतिहास के अध्ययन हेतु स्थापित की गई थी। काशी में रहते हुए गुलेरी जी का हिन्दी के मूर्धन्य विद्वानो से सम्पर्क हुआ। डा० श्यामसुन्दर दास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि हिन्दी साहित्य के निर्माताओं से गुलेरी जी का सौहार्द भाव था। इसी प्रकार पं० गोरीशंकर, हीराचन्द ओझा, मुन्शी देवी प्रसाद, मुंसिफ, राखालदास बंद्योपाध्याय जैसे पुरातत्त्वविद् भी उन्हे आदर की दृष्टि से देखते थे।

गुलेरी जी की सारस्वत साधना ज्ञान विज्ञान की विभिन्न सीमाओं का स्पर्श करती है। एक ओर वे प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व, धर्म और संस्कृति विषयक गम्भीर शोध पूर्ण निबंध लिखते है, तो दूसरी ओर साहित्यालोचन से सम्बन्धित उनके निबंधो की संख्या भी पर्याप्त है। १९०० ई० मे उन्होने जवाहर लाल जैन वैद्य के सहयोग से जयपुर मे नागरी भवन की स्थापना की तथा समालोचक नामक मासिक पत्र निकला। कालान्तर मे जब वे काशी आये तो नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका का सम्पादन भार भी उन्हे ग्रहण करना पड़ा। इसी अवधि में पत्रिका मे उनके विभिन्न शोध निबंध प्रकाशित हुए। गम्भीर शोध साहित्य भी लिखा। १९११ मे उनकी प्रथम कहानी 'सुखमय जीवन' प्रकाशित हुई। १९१३ में 'बुद्धू का कांटा' छपी तथा १९१५ मे उनकी सर्वाधिक विख्यात कहानी "उसने कहा था" सरस्वती में प्रकाशित हुई। अन्तिम कहानी ने गुलेरी जी को हिन्दी के शीर्षस्थ कथाकारों की श्रेणी में प्रतिष्ठित कर दिया। बाल्यावस्था का प्रेमाकर्षण आगे चलकर जमादार लहनासिंह मे अद्भुत त्याग एवं उत्सर्ग के भाव भर देता है और वह अपने द्वारा दिये गये वचन की रक्षा प्राण देकर ही करता है। कहानी में अमृतसर का आंचलिक परिवेश, प्रथम महायुद्ध के फ्रान्सीसी मैदान में घटी रोमांचकारी घटनाये, पूर्वदीप्ति पद्धति का सफल प्रयोग, सब कुछ हिन्दी कहानी के लिये नवीन तथा अद्भुत था। यही कारण है कि कई दशाब्द पुरानी होने पर भी "उसने कहा था" का आकर्षण पाठकों में कम नहीं हुआ है।

कहानियो की ही भांति गुलेरी जी के भावात्मक निबंधों की संख्या भी यद्यपि कम है, किन्तु अपनी व्यंग्यात्मक शैली, लाक्षणिक भाषा तथा प्रसंगगर्भत्व के कारण ये निबंध साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके हैं। 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक भाषा शास्त्रीय निबंध गुलेरी जी के विशाल अध्ययन तथा पाण्डित्य के निर्देशक हैं।

हिन्दी की ही भांति अंग्रेजी तथा संस्कृत मे भी गुलेरी जी ने पर्याप्त मात्रा में लिखा है। 'इण्डियन एण्टीक्वेरी' में छपे उनके निबंध आनशिव,भागवत इन पतंजलि (१८१३), दि रियल आथर ऑफ जयमंगला ए कमेण्टरी ऑन वात्स्यायन काम सूत्र (१६१३) यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि गुलेरी जी ने पुरातात्त्विक शोध के क्षेत्र मे जो मानदण्ड स्थापित किया, उसकी महत्ता को पौर्वात्य एवं पाश्चात्य पुरातत्त्वविदो ने स्वीकार कर लिया था। सस्कृत गद्य तथा पद्य लेखन मे भी उन्हें नैपुण्य प्राप्त था। उनके द्वारा लिखी हुई अनेक प्रशस्तिमूलक कवितायें तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित हुई थी।

खेद है कि उच्चकोटि की भावयित्री तथा कारयित्री प्रतिभा का धनी यह सरस्वती उपासक अधिक आयु लेकर नही आया था। १२ सितम्बर १६२२ को मात्र उनतालीस वर्ष की आयु में ही मस्तिष्क ज्वर के कारण उनका काशी में निधन हो गया। कालान्तर में नागरी प्रचारिणी सभा ने समस्त गुलेरी वाङ्मय को अनेकखण्डो मे 'गुलेरी ग्रन्थावली' के रूप मे प्रकाशित करने का संकल्प किया। खेद है कि इसका एक ही भाग इतिहास विषयक सामग्री वाला प्रकाशित हो सका।

गुलेरी जन्म शताब्दी के अवसर पर सारस्वत सत्र के उस महान् हेता को हमारी उपयुक्त श्रद्धांजलि यही हो सकती है, कि हम उनके समग्र साहित्य को पुनः प्रकाशित करने का सकल्प करें। गुलेरी जी का वैयक्तिक पुस्तक संग्रह उनके पुत्र द्वारा अजमेर स्थित परोपकारिणी सभा (स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित) को प्रदान कर दिया गया था। इस पुस्तक संग्रह मे वेद, संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी के नानाविध महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अपूर्वसंग्रह है। प्रत्येक पुस्तक पर गुलेरी जी के व्यक्तिगत पुस्तकालय की रबर मोहर तथा उनके हस्ताक्षर भी अंकित हैं। मेयो कालेज के पुराने रिकार्ड में भी गुलेरी जी के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें हैं, जो अनुसंधान की अपेक्षा रखती है।

—◆—

सत्यभाषण—

जैसा कुछ अपनी आत्मा में हो और असम्भवादि दोषों से रहित करके सदा वैसा ही बोले उसको सत्यभाषण कहते हैं।

(आर्योद्देश्य रत्नमाला—५)

शान्ति दूत (कुमार हिन्दी)

वह देखो, अजगर निकला
धरती के पेट में से,
जैसे सेब में से कीड़ा।
उसने धरती को लपेट लिया है,
अपनी लपेट में।
वह बढ़ता ही जाता है,
बढ़ता ही जाता है।
सैकड़ो मील के घेरे मे उसने लपेटलिया है, धरती को
अब हजारो हजारों मील
उसकी लपेट मे आ गया है।
हजारों, हजारो मील तक
धरती सूनी हो गई है,
जगह, जगह
आग के फव्वारे निकल रहे है,
आग के फव्वारे
लाल, सुर्ख, गर्म आग के फव्वारे।
अब क्या होगा ?
क्या होगा ?
चिन्ता मत करो
किसका विनाश होगा
भारत के एक कोने में,
झोपड़ी में बैठा
एक सन्त
जड़ी बूटियो को रगड़ रहा है।
वह जादुई भस्मी तैयार कर रहा है,
वह एक ऐसी रेखा
अजगर की राह मे खीचेगा
कि अजगर
उस पर से गुजरते ही
भस्म हो जायेगा।
भस्म, भस्मी भूत
फिर सब तरफ शातिदूत दौड़ेंगे
सब तरफ होगी शान्ति

★

पाप—

जो पुण्य से उलटा और मिथ्याभाषणादि करना है, उसको पाप कहते हैं।

(आर्योद्देश्य रत्नमाला—६)

स्वामी श्रद्धानन्द जी की लेखनी से--

७५ वर्ष पूर्व--गुरुकुल वृत्तांत

प्रस्तुतकर्ता--जगदीश विद्यालंकार

गुरुकुल को कांगड़ी में खोले साढे छः वर्ष हो चुके। ५१ से आरम्भ करते हुए, इस समय विद्यार्थियों संख्या २१७ तक पहुँच चुकी है। इतने बड़े परिवार में से आज--

पहिली मृत्यु का समाचार देते हुए जो दुःख गुरुकुल निवासियों को हो रहा है, उसको साधारण मनुष्य कभी समझ सकते है। सन्निपात ज्वर को दूर करने का जो प्रयत्न किया गया, उसे पाठकगण सुन ही चुके हैं। सारा आश्रम खाली कर दिया गया था। कुल ब्रह्मचारी खेमो तथा छप्परो मे चले गये। सारे आश्रम को पहले कुछ दिनों खुला छोड़ा गया, फिर सब कमरों में सफेदी हुई। उसके पश्चात् सब कमरो मे गन्धक मिलाकर उन्हें बन्द किया गया। फिर दवाई डालकर पानी से सब को धोया गया। तब आश्रम के स्थान में ब्रह्मचारियो का पुनः प्रवेश हुआ है, पानी उबाल कर दिया जाता है। दूध बाहर से आना बन्द कर दिया गया था। अपनी गोशाला का दूध भी बड़ी सफाई और सावधानी से दुह कर भंडार में सुरक्षित आता और उबाल कर दिया जाता है। दही जमाना तक बन्द कर दिया गया है, क्योंकि उसके द्वारा भी रोग का बीज आ सकता है। सफाई भी ठीक कराई गई है। इन्ही पूर्वोपायों का परिणाम है कि जितने बीमार हुए थे, सब राजी हो गये थे। केवल निर्बलता बाकी थी। ब्र० नवीनचन्द्र, जिसकी आयु ८ वर्ष छः मास की थी, सर्वथा नीरोग हो चुका था। १२ अगस्त को जंगल मे बड़े आनन्द से श्रावणी का पर्व मनाया गया और साम गान हुआ। दिन को प्यारा नवीन बड़े आनन्द मे था, कुर्सी पर बैठा और डाक्टर सुखदेव जी के साथ विचित्र बाते करता रहा। अकस्मात् मध्याह्नोत्तर पता लगा कि बगल में पीप भर गई है। चीरा दिया गया। पीप का विष रक्त मे फैल चुका था। डाक्टर सुखदेव को रोगी अपने पास से जाने नहीं देता था। रातों जागने से निर्बल डाक्टर अन्त को मेरे पास आकर साढ़े नौ बजे सो गये। ग्यारह बजे उनको बीमार के पास बुलाया गया। मैं भी पीछे पहुँचा। जो कुछ यत्न मनुष्य के वश में थे किये गये, किन्तु परमात्मा के नियम मे कौन हस्तक्षेप कर सकता है। हमारे देखते-देखते दम बन्द होने लगा। डाक्टर हरप्रसाद तथा डाक्टर सुखदेव दोनों लगे रहे। १ बजे के १४ मीनिट पर अन्तिम श्वास के साथ ही नवीन हम सब से बिछुड़ गया। प्रातः ५ बजे बड़े ब्रह्मचारी अपने भाई की अन्त्येष्ठी संस्कार करने पहुँच गये और मैंने भी परमात्मा की आज्ञा को शिरोधार्य कर उन्हीं हाथों से दाह कर्म किया, जिनसे कि मुझे अपने उस पुत्र का समावर्तन संस्कार करना चाहिये था। परमात्मा का न्याय नियम धन्य है।

इसके दूसरे दिन ही भीष्म ब्रह्मचारी (रोपड निवासी ला० गोविन्दराम जी अर्जीनवीस का पुत्र) रोग निवृत्ति के पश्चात् चलने फिरने भी लग गया था। १३ अगस्त के दिन को उसे दस्त लगे। मै पहिली रात का जगा हुआ अभी दो घंटे ही सोया था कि फिर बुलाया गया। भीष्म ब्रह्मचारी को दिन से ही बमन और दस्त लग गये हैजा हो गया था। इस रोग का बीज मालूम हुआ कि, हरद्वार से आया। रात भर फिर जगते व्यतीत हुई। एक और ब्रह्मचारी को दस्त थे, और दर्द कभी इधर कभी उधर। डाक्टर जो ६० रातो के जागे हुए थे बड़े ही कष्ट में रहे। ब्रह्मचारी की माता पहिले से ही वहां थी। उस देवी ने आंसुओं को रोक बड़े धैर्य से भीष्म की सेवा की। बालक के पिता भी पहुँच गये है। डाक्टर सुखदेव केवल उसी पर लग गये। अब परमात्मा की कृपा से आराम हो गया है। शेष सब रोगी ठीक है और आशा पड़ती है कि शीघ्र सर्वथा शान्ति होगी। इस समय हरद्वार का आना जाना सर्वथा बन्द कर दिया गया है।

विपत्तियां इकट्ठी आती है। इस वर्ष गंगा बहुत चढ़ी। गोहना झील के उमडने वाले वर्ष से कुछ ही कम रही थी। उस दिन ब्रह्मचारी और अध्यापक तथा दर्शक सब ने बन्द बांधने में बड़ा काम किया। यहा तक कि गुरु जी श्री पंडित काशीनाथजी भी टोकरी लेकर बांध में मिट्टी डालते रहे। घाट की बंधी हुई तीन नवकाएं बह गई थी, किन्तु गुरुकुल की कुछ भी हानि नही हुई। इस पर ऐसे महापुरुषों ने जिन्हें गुसाईं तुलसी दास जी ने भी दूर से ही नमस्कार किया है, यह प्रसिद्ध कर दिया कि "गुरुकुल के यात्रियो से भरी हुई तीन किश्तियां नील-धारा मे डूब गईं और जो यात्री जाते थे, उनके जानमाल का नुकसान हुआ।" गुरुकुल के प्रेमियो को यह सूचना देना मै आवश्यक समझता हूँ कि यह सर्वथा झूठ उडाया गया है।

(बुधवार ४ भाद्रपद संवत् १६६५.)
१६ अगस्त १६०८

मिथ्याभाषण

जो कि सत्यभाषा अर्थात् सत्य बोलने से विरुद्ध है उसको मिथ्याभाषण कहते हैं।
(आर्योद्देश्य रत्नमाला—७)

गुरुकुल-समाचार

विश्व-पर्यावरण-दिवस का आयोजन—

५ तथा ६ जून को गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय मे विश्व-पर्यावरण-दिवस मनाया गया। इस कार्यक्रम के संयोजक डा० विजयशंकर, अध्यक्ष-वनस्पति विभाग थे। ५ जून १६८३ के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता श्री आर० एन० श्रीवास्तव, प्रिंसिपल, प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र, गुरुकुल कांगडी ने की। इस अवसर पर देश के अन्य विश्वविद्यालयो से भी लगभग १२ विद्वान् प्रतिनिधियों ने भाग लिया और पर्यावरण संरक्षण के उपायो पर अपने लेखो का वाचन किया। समारोह का संचालन डा० बी० डी० जोशी, अध्यक्ष, जीव-विज्ञान विभाग ने किया।

६ जून ८३ को माननीय श्री दिग्विजय सिह, केन्द्रीय राज्यमंत्री पर्यावरण विभाग, समारोह के मुख्य अतिथि थे। अपने व्याख्यान मे उन्होंने पर्यावरण को शुद्ध बनाने पर बल दिया तथा भारत सरकार को पर्यावरण योजना से अवगत कराया। सभा की अध्यक्षता प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार, उप-कुलपति, गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय ने की। कार्यक्रम के संचालक डा० जयदेव वेदालंकार, अध्यक्ष, दर्शन विभाग थे। इस अवसर पर पर्यावरण से सम्बन्धित एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया तथा एक नारा दिया गया "अगर चाहते हो सुख मे जीना, नहीं भूलना वृक्ष सींचना"।

विश्व-पर्यावरण-दिवस के आयोजन के अन्तर्गत मातृ-ग्राम कागडी मे स्थानीय न्यायाधीश श्री घनश्याम पन्त की अध्यक्षता मे एक सायकालीन सभा का आयोजन किया गया। इसका उद्देश्य ग्रामवासियो मे पर्यावरण से सम्बन्धित जागरूकता उत्पन्न करना एवं प्रसार करना था।

गंगा परियोजना स्वीकृत—

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय द्वारा प्रेषित गंगा परियोजना को भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया है। इस निमित्त गंगा में होने वाले प्रदूषण के निराकरण हेतु अनुसंधान के लिये भारत सरकार ने १४ लाख ३० हजार रुपये का अनुदान स्वीकृत किया है। डा० विजयशकर, अध्यक्ष, वनस्पतिविज्ञान विभाग के निदेशकत्व मे इस परियोजना के अन्तर्गत अनुसंधान कार्य किया जायेगा। इसके साथ अनुसंधान कार्य में सहायक रूप मे डा० बी० डी० जोशी, अध्यक्ष, जीवविज्ञान विभाग, श्री एच० सी० ग्रौवर, अध्यक्ष-भौतिकी विभाग, डा० आर० के० पालीवाल अध्यक्ष-रसायन विभाग, एवं डा० पी० के० कौशिक रहेंगे।